International Journal of Humanities and Social Science Invention (IJHSSI)
ISSN (Online): 2319 – 7722, ISSN (Print): 2319 – 7714
www.ijhssi.org ||Volume 6 Issue 6 || June 2017 || PP 52-55

अभिज्ञानशाकुन्तलम् में सौन्दर्य बोध

डॉ. वीरेन्द्र कुमार जोशी
व्याख्याता संस्कृत
गौरी देवी राजकीय महिला महाविद्यालय
अलवर

सौन्दर्य की चाह मनुष्य की सहजात वृत्ति है। मानव की चेतना का विकास एक तरह से उसकी सौन्दर्य चेतना का विकास है। यह बात अवश्य है कि भिन्न–भिन्न समयों में सौन्दर्य को भिन्न – भिन्न दृष्टियों से देखा गया है । भारतीय साहित्य में प्राचीन काल से ही सौन्दर्य – चिन्तन होता रहा है ।

सौन्दर्य का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है "सुन्दरस्य भावः सौन्दर्यम्" अर्थात् सुन्दरता का भाव ही सौन्दर्य है । सुन्दं राति इति सुन्दरम् तस्यभावः सौन्दर्यम्" ऐसे कुछ विद्वानों ने व्याख्या की है । इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है "सु द्रियते अर्थात् भली प्रकार आदृत ही सुन्दर है । वस्तुतः "सुन्दर + ण्यत्र= सुन्दरता" या सुन्दर होने का भाव ।" सुन्दर की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि "सुष्ठु उनत्ति आर्द्राकरोतिचिन्तमिति" अर्थात् जो चित्त को आर्द्र बना देता है, वही सुन्दर है । अमर कोष में सुन्दर शब्द का अर्थ रुचिर , चारु , सुषमम् , साधु , शोभनम् , कान्तम् , मनोरमम् , रुच्यम् , मनोज्ञम् , मंजु , मंजुलम् इत्यादि है । डॉ. राम लखन शुक्ल ने कहा है कि संस्कृत में सुंदर के पर्याय से ही हम सहज रूप में यह अनुमान लगा सकते हैं कि सुन्दर भारतीय साहित्य कला और जीवन में किस प्रकार महत्वपूर्ण रहा है ।

विद्वानों ने सौन्दर्य को विश्लेषित करते हुए इसके दो रूपों की सर्जना की है। प्रथम "विषय" अथवा 'वस्तुनिष्ठ" सौन्दर्य तथा सौन्दर्य का दूसरा रूप "विषयि" अथवा "आत्मनिष्ठ" सौन्दर्य । सौन्दर्य विचारक , प्रथम कोटि के सौन्दर्य की सत्ता वस्तु में स्वीकार करते हैं , द्वितीय मत के पोषक विद्वान सौन्दर्य का आधान मनुष्य के मन में करते हैं । वस्तुतः सौन्दर्य को एक साथ वस्तुनिष्ठ व आत्मनिष्ठ दोनों मानना ही संगत है । सौन्दर्य की वस्तुनिष्ठता का आस्वाद सर्वजन सुलभ होता है । किन्तु आत्मनिष्ठ के लिए संवेदनशील मत की अपेक्षा है। विषयनिष्ठ सौन्दर्य चाक्षुषप्रत्यक्ष सापेक्ष होता है किन्तु विषयिनिष्ठ सौन्दर्य में अन्तर्मन का आकर्षण प्रधान होता है । भारतीय परम्परा में सौन्दर्य के चिन्तन का क्रम साहित्य की धारा के साथ ही साथ प्रवाहित हुआ है । मूलतः कवि और दार्शनिक ही जो इस परम्परा के पोषक हैं , सौन्दर्य –शास्त्री भी हैं । सौन्दर्यशास्त्र अलग से शास्त्र की श्रेणी में होते हुए भी व्यवहार रूप में साहित्य का अभिन्न अंग रहा है । इसीलिए भारतीय परम्परा में दार्शनिकों , कवियों और सौन्दर्यशास्त्रियों की वाणी से सौन्दर्य की रस स्रोतास्विनी का अजस्र निर्बाध प्रवाह त्रिवेणी की भाँति हर युग में सहृदयों को रससिक्त करता आया है । वैदिक से लौकिक संस्कृत की ओर बढ़ते हुए अनेकों परिवर्तन और परिवर्तन हुए । किन्तु सौन्दर्य के प्रति आकर्षण की परम्परा अविच्छिन्न रही । इसी परम्परा में महाकवि कालिदास भी अपनी लेखनी से सौन्दर्य के रमणीय चित्र प्रस्तुत करने में सफल रहे ।

कालिदास की सर्जना का मूलभाव ही सौन्दर्यग्राही प्रवृत्ति द्वारा प्रेरित है , अतः समान रूप से उनकी रचना सर्वकाल , सर्वदेश सुन्दर है । भारतीय धर्म , संस्कृति , शिल्प , दर्शन अथवा जीवन का कोई भी प्रसंग हो उसकी महानता , उदात्तता अथवा लालित्य की दृष्टि से सर्वोत्कृष्ट रूप ही कालिदास की कृति है । ऐसा लगता है जैसे कालिदास की पार्वती के सौन्दर्य के प्रति कही गई उक्ति –

सर्वोपमा द्रव्यसमुच्चयेन यथाप्रदेशं विनिवेशितेन ।

शा निर्मिता विश्वसृजा प्रयत्नादेकस्थ सौन्दर्यदिदृक्षयेव ॥

वस्तुतः कालिदास सौन्दर्यवादी कवि थे । उन्होंने अनेक रूपों में सौन्दर्य का वर्णन किया है स्वरूप के सम्बन्ध में कालिदास का विचार है कि वह प्रत्येक स्थिति में पूर्ण होता है । उसे मंडन की कोई आवश्यकता नहीं होती । यह अनुकूल परिस्थितियों में अनुकूलता से और विपरीत परिस्थितियों में विरोध से शोभायमान होता है ।

अभिज्ञानशाकुन्तलम् में शकुन्तला के सौन्दर्य को निरूपित करते हुए उन्होंने इसी तथ्य को स्पष्ट किया है कि सौन्दर्य किसी अलंकरण पर आश्रित नहीं होता । अनुकूल अलंकरण सौन्दर्य की वृद्धि करता है और अनुपयोगी या असुन्दर वस्तु भी सच्चे सौन्दर्य के सान्निध्य से स्वयं को सुशोभित होने लगता है यथा कृ

सरसिजमनुविद्धं शेवलेनापि रम्यं,

मलिनमणि हिमांशोलक्ष्म लक्ष्मी तनोति ।

इयमधि मनोज्ञा वल्केलेनापि तन्वी

किमिव ही मधुराणां मण्डनं नाकृतिनाम् ॥

यहाँ शैवाल और कलंक का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए कालिदास ने ये ध्वनित किया है कि ये उपादान किसी भी स्थिति में सौन्दर्य की अभिवृद्धि करने वाले नहीं हो सकते । किन्तु सुन्दर समीपता के कारण स्वयं भी सुशोभित हुए और दूसरों को भी सुशोभित किया । इसी प्रकार सुन्दरी शकुन्तला वल्कल वस्त्र धारण करके भी सुन्दर ही लगती है क्योंकि वास्तविक सौन्दर्य के लिए तो भी कोई वस्तु अलंकरण सिद्ध हो सकती है । इसी प्रकार तपस्यारत अपूर्व सुन्दरी पार्वती का मुख जटाओं से भी उतना ही सुन्दर लगता है जितना कि वेणियों से –

यथा प्रसिद्धर्मधुर शिरीरुहेर्जटाभिरप्येवमभूत् तदाननम् ।

न षट्पद श्रेणिभिरेव पंकजं सशैवलासंगमपि प्रकाशते ।।

विधाता की सृष्टि शकुन्तला के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए महाकवि कालिदास कहते हैं –

चित्रेनिवेश्च परिकल्पित सत्वयोगाद्,

रूपोच्चचेन मनसा विधिना कृतानु ।

स्त्री रत्न सृष्टिरपरा प्रतिभाति सा मे ,

धातुविभुत्वभनुन्चित्यवपुश्च तस्याः द्यद्य

कालिदास ने सुन्दर आकृति का अथवा सुन्दर–बाह्य संरचना का अधिकता से वर्णन किया है । सौन्दर्य की पहली आवश्यकता आकृति की सुन्दरता है । आकर्षण का सबसे बड़ा और पहला कारण बाह्य सुन्दरता ही है । इसी से आकृष्ट होकर कोई भी व्यक्ति सुन्दरता के समीप जाता है । तत्पश्चान् उसके सुन्दर गुणों का परिचय पाता हैं । दुष्यन्त सर्वप्रथम शकुन्तला के रूप से ही आकर्षित होता है –

इदं किलाव्याज मनोहरं वपुः ।

उसे आश्चर्य होता है कि वनवासिनी इन कन्याओं का सौन्दर्य तो राजमहल की स्त्रियों से भी बढ़कर है । तात्पर्य यह हुआ कि सौन्दर्य का कोई निश्चित स्थान या सीमा नहीं तथा नैसर्गिक सौन्दर्य के आगे कृत्रिम सौन्दर्य फीका होता है ।

आकृति का सौन्दर्य इतना महत्वपूर्ण होता है कि उसके दर्शन मात्र से नेत्रों को तो सुख मिलता ही है । ह्रदय को भी तृप्ति मिलती है । इस सौन्दर्य की सबसे बड़ी विशेषता है कि बिना प्राप्त हुए दूर से भी उतना सुख ही प्रदान करता है जितना कि समीप से । शकुन्तला की मधुर आकृति के दूर से दर्शन मात्र से दुष्यन्त ह्रदय से खिल जाता है , वह उसे नेत्रों का चरमफल ही मान लेता है–

अये लब्धं नेत्रनिर्वाण ।

पं० बलदेव उपाध्याय ने कालिदास के प्रेम और सौन्दर्य की मार्मिक समीक्षा प्रस्तुत करते हुए लिखा है –

'कालिदास श्रृंगार तथा प्रेम के भावुक कवि हैं । अतः उनकी दृष्टि सौन्दर्य की कोमल भावना को पहचानने तथा प्रकट करने में नितान्त चतुर है । उनका रम्य ह्रदय उन सौन्दर्य – वर्णनों में झांकता हुआ दीख पड़ता है । वे बाह्य प्रकृति और अन्तः प्रकृति के पूरे सामरस्य के उपासक हैं । बाह्य प्रकृति जो अभिरामता प्रस्तुत करती है वही अभिरामता अन्तःप्रकृति में भी विद्यमान है । तभी तो हमारे कवि की दृष्टि में शकुन्तला कोमल लता के समान लावण्यमयी प्रतीत होती है । शकुन्तला के अंग – प्रत्यंग में प्राकृतिक स्निग्ध सौन्दर्य का आधान दिखलाते हुए कहा है –

अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू ।

कुसुममिव लोभनीयं योवनमंगेषु संनद्धम् ।।

निसर्गकन्या शकुन्तला के लिए कवि ने नैसर्गिक उपमानों का ही प्रयोग किया है । दुष्यन्त उसके रूप की सराहना करता हुआ कहता है – उसके अधर कोंपल की तरह लाल हैं , बाहें कोमल डाल का अनुकरण कर रही हैं । फूल के जैसा लुभावना यौवन इसके अंगों में सन्नद्ध है । यह सौन्दर्य कला में सारा नहीं समा सकता । नायिका के चित्र के लिए दुष्यन्त कहता है –

यद् यत् साधु न चित्रे स्यात् क्रियते तत् तदन्यथा ।

तथापि तस्या लावण्यं रेखया किञ्चिदन्वितम् ॥

चित्र में जो कुछ भी अच्छा नहीं बना है , उसे मिटा –मिटा कर फिर से बना दिया है , फिर भी शकुन्तला का सौन्दर्य रेखाओं में थोड़ा – सा ही अँट सका है । निस्सीम सौन्दर्य का अनुभव मनुष्य चराचर जगत् के साथ एकाकार होकर कर सकता है । इसी चित्र को समग्र बनाने के लिए दुष्यन्त की परिकल्पना है –

कार्या सैकतलीनहंसमिथुना स्त्रोतोवहा मालिनी

पादास्तामभितो निषण्णहरिणा गौरीगुरोः पावनाः ॥

शाखालम्बितवल्कलस्य च तरोर्निर्मातुमिच्छाम्यधः

शृङ्गे कृष्णमृगस्य वामनयनं कण्डूयमानां मृगीम् ॥

अभी इसमें वह मालिनी नदी बनानी है , जिसके रेतीले तट पर हंसों के जोड़े दुबके हों । उसके आसपास पार्वती के पिता हिमालय की पावन ढलानें बनानी हैं। एक ऐसा पेड़ जिसकी डालों पर मुनियों के वल्कल सूखने को लटकाये गये हैं , उसके नीचे मैं अपने सींग से कृष्णमृग की बायीं आँख खुजाती हरिणी को बनाना चाहता हूँ । प्रेम की इस तल्लीनता और सृष्टि के कण– कण के साथ एकाकार होने में ही सच्चे सौन्दर्य के दर्शन होते हैं । ऐसे सौन्दर्य को महाकवि ने अपनी रचनाओं में सजीव बना दिया है । जब एक ओर कृष्णमृग तथा उसके सींग का प्रसङ्ग आता है और दूसरी ओर मृगी तथा उसके वामनयन का , तब पदार्थ सूक्ष्म हो जाते हैं । और चित्रण की प्रक्रिया कठिन हो जाती है। इस रहस्य को प्रकाशित करने के लिए भिन्न – भिन्न प्रयोग किये गये हैं ।एक ओर मृग का कठोर सींग है और दूसरी ओर मृगी का कोमल नेत्र । कठोरता और कोमलता के बिन्दुओं को एक स्थिति में लाकर के तथा मृग–मृगी की परमप्रीति तथा मृगी की आश्वस्तता को प्रस्तुत करके कवि ने विरुद्ध स्थितियों के चित्रण से सौन्दर्य का उन्मीलन किया है ।

नायिका शकुन्तला के सौन्दर्य का यह वर्णन कितना पवित्र और मनोहारी है । यह वर्णन हृदय में सौन्दर्य सरिता की पवित्र धारा बहाने वाला है –

मानुषीषु कथ वा स्यादस्यरूपस्य सम्भवः ।

न प्रभातरलं ज्योति रुदेति वसुधातलात् ।।

उसका सौन्दर्य मानवीय सौन्दर्य से अनुपम है । राजा दुष्यन्त को महान् आश्चर्य होता है कि मनुष्य जाति में ऐसा रूप कैसे सम्भव हुआ ? प्रकाश से तरल ज्योति कहीं पृथ्वी से उत्पन्न होती है ? शकुन्तला के अमुक्त कौमार्य का वर्णन करते हुए कवि ने बड़ी कोमलता एवं पवित्रता का भाव दर्शाया है–

अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलून कररुहै–

रनाविद्ध रत्नं मधु नवमनास्वादितरसम् ।

अखण्डं पुण्याणां फलमिव च तद्रूपमनघं

न जाने भोक्तारं कमिहसमुपस्थास्यति विधि ॥

शकुन्तला अनाघ्रात पुष्प की भाँति अभुक्तपूर्ण यौवना है। उसका अछूता यौवन बड़ा मनोरम है ।

कालिदास सुन्दर चरित को महनीय मानते हैं। सुन्दर चरित का गान देवता करते हैं । शारीरिक सौन्दर्य के पक्ष में यह बात नहीं है । दुष्यन्त का यश स्वर्ग में प्रतिष्ठित हो चुका है । देवता गीत योग्य अर्थ का चिन्तन करके सुरसुन्दरियों के अङ्गराग से अवशिष्ट रंगों से कल्पलता के वस्त्रों पर दुष्यन्त का चरित लिखते हैं –

विच्छित्तिशेषः सुरसुन्दरीणां वर्णैरमी कल्पलतांशुकेषु ।

सञ्चिन्त्य गीतक्ष ममर्थबन्धं दिवौकसस्त्वच्चरितं लिखन्ति ॥

कालिदास ने इस प्रकार के उदात्त चरित की सर्वत्र प्रशंसा की है । जब चरित महनीय हो जाता है , तब वह स्वर्ग तक पहुँच जाता है । देवना उसे श्लोकबद्ध करते हैं , गीत के रूप में प्रस्तुत करते हैं , उसे कल्पवल्ली के वस्त्रों पर लिखते हैं ।

वस्तुतः कालिदास सौन्दर्यवादी कवि थे । सौन्दर्य के अनुभव को अभिव्यक्ति प्रदान करना और उस अनुभव तक जनसामान्य को पहुंचा देना किसी साधारण प्रतिभा का कार्य हो ही नहीं सकता । वास्तव में देवी प्रतिभा , असाधारण मेधा और व्यापक संवेदना का परिणाम है कालिदास की सौन्दर्य – ग्राहिका और सौन्दर्य प्रकाशिका दृष्टि । अभिज्ञानशाकुन्तलम् में महाकवि कालिदास ने सौन्दर्य को उदात्त धरातल पर अधिष्ठित किया है ।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1 – मीरा का सौन्दर्य बोध – डॉ रणजीत सिंह गठाला

2 – रघुवंश महाकाव्य – व्याख्याकार – डॉ. जयकिशन प्रसाद

3 – अभिज्ञानशाकुन्तल – डॉ. प्रभाकर शास्त्री

4 – रघुवंश महाकाव्य प्रथम सर्ग – व्याख्याकार – डॉ= रामप्रकाश सारस्वत

5 – अभिज्ञानशाकुन्तल – व्याख्याकार– डॉ – वासुदेव कृष्ण चतुर्वेदी

6– संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास – डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी